SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

नाट्य साहित्य में अभिनय की अवधारणा

आलोक मिश्रा, (Ph.D.), हिंदी विभाग
एस0एस0 (पी0जी0) कॉलेज शाहजहाँपुर, उत्तरप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
आलोक मिश्रा, (Ph.D.), हिंदी विभाग
एस0एस0 (पी0जी0) कॉलेज शाहजहाँपुर,
उत्तरप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 04/05/2021
Revised on : -----
Accepted on : 11/05/2021
Plagiarism : 01% on 04/05/2021

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Tuesday, May 04, 2021
Statistics: 20 words Plagiarized / 2103 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

ukV~; lkfgR; esa vfHkuo; dh vo/kkj.kk ukVd dh mRifRr vkuUn dh izkfIr gsrq dh xhA Hkkjrh; lkfgR; esa tc Js"B lkfgR; ch [kkst gcbZ rc ukVd lcls vkos feyk ftldk dkj.k Fkk eapuA eapu dk pje /;s; gksrk vkuUn izkfIr gS] ftldk ewyk/kkj dyk gS ysfdu dyk lEcU/kh /kkj.kk esa ik'pkR; vkSj Hkkjrh; fo}kuksa esa fHkUurk ikbZ tkrh gSA if'peh la.d`fr dh tM+ xhd lH;rk gS vkSj xhd lH;rk lglzksa o'kZ izkphu bZftlV vkSj cschyksfu;k ds lkezkT;ksa ds u"V gksrs gh xhd lH;rk dk mn: gqvkA xhd lH:rk loZtu ds mRd"kZ ij vk/kkjr FkhA dkO; dks mUgksaus loZJs"B dyk ekuk vkSj mldks lcls mPp LFkku iznku fd;kA ftldk izR;{k izek.k

शोध सार

नाटक की उत्पत्ति आनन्द की प्राप्ति हेतु की गयी। भारतीय साहित्य में जब श्रेष्ठ साहित्य की खोज हुई तब नाटक सबसे आगे मिला जिसका कारण था मंचन। मंचन का चरम ध्येय होता है आनन्द प्राप्ति, जिसका मूलाधार कला है, लेकिन कला सम्बन्धी धारणा में पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों में भिन्नता पाई जाती है। पश्चिमी संस्कृति की जड़ ग्रीक सभ्यता है और ग्रीक सभ्यता सहस्रों वर्ष प्राचीन ईजिप्ट और बेबीलोनिया के साम्राज्यों के नष्ट होते ही ग्रीक सभ्यता का उदय हुआ। ग्रीक सभ्यता सर्वजन के उत्कर्ष पर आधारित थी।

मुख्य शब्द

नाटक, साहित्य, संस्कृति.

काव्य को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कला माना और उसको सबसे उच्च स्थान प्रदान किया। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाश्चात्य विद्वान होमर के काव्य में मिलता है। उसके काव्य में सामान्य जन के रूचि संस्कार भी निहित हैं। होमर का काल ईसा पूर्व की आठवीं शताब्दी में ठहरता है।

होमर के बाद ग्रीक में नाटकों का विकास ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी है। इस काल के अधिकतर नाटक हास्यरस प्रधान थे। इस काल के नाटककारों में सिर्फ रगरेस्टोफेनीज के कुछ नाटक प्राप्त हैं। उसका प्रसिद्ध नाटक है 'फ्रग्स'। इस काल के नाटकों में उन्हीं बातों के चित्रण पर बल दिया गया जो सामान्य जन के नित्यप्रति के जीवन से सम्बन्धित हो।

इसे ईसा पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी में प्लेटो और अरस्तू ने दार्शनिक रूप दिया। प्लेटो ने काव्य के नैतिक प्रभाव की व्याख्या की तथा सत्य को काव्य की कसौटी बनाया, इस सम्बन्ध में डॉ. दशरथ ओझा जी ने लिखा है। प्लेटो और उसके बाद अरस्तू ने अन्य शास्त्रों और

विधाओं के साथ–साथ काव्य शास्त्र को भी दार्शनिक भावना से ग्रहण किया। प्लेटो ने काव्य के नैतिक पक्ष की व्याख्या की और काव्यानुभूति को ऐन्द्रिय मानते हुए उसे समाज के लिए दूषित कहा, सत्य को काव्य की कसौटी बनाया तथा तत्कालीन नाटकों एवं काव्य को सत्य का छायाभास कहकर उनके प्रति अवज्ञा प्रकट की। अरस्तू ने अपने गुरू प्लेटो के काव्योलोचन पर व्यापक दृष्टि डाली और छायाभास को ही काव्य का मूलरूप कहा। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पोयटिक्स' में दुःखान्त नाटकों द्वारा आनन्द की उपलब्धि तथा काव्य पर विस्तृत व्याख्या की और अलंकारशास्त्र की रचना की।''[1]

भारतीय साहित्य में अभिनय की अवधारणा

वहीं भारतीय दृष्टि में कला को काव्य का अंग माना गया है। कला की दृष्टि में शिक्षा और अभिप्राय में मनोरंजन की मुख्यता मानी गयी है। काव्य की आत्मा दिव्य आत्मा मानी गयी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय पाश्चात्य आचार्यों की दृष्टि आरम्भ से ही भिन्न रही।

भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम वामन के नाटक को सभी विधाओं से श्रेष्ठ घोषित किया गया। उन्होंने कहा कि जब पाठक के सम्मुख कथा, आख्यायिका या महाकाव्य के पात्र नाटक के सजीव पात्रों का सदृश्य अभिनय करते हुए दृष्टिगत होते हैं तो पूर्ण काव्यरस की उपलब्धि होती है। वे लिखते हैं:

'तेन ये काव्याभ्यासप्राक्तनपुण्यादिहेतुबलाद्धि (इति) सहृदयाः तेषं परिमिताविभावाद्युन्मीलनेऽपि परिस्फुट एव साक्षात्कारकल्पः काव्याथः स्फुरति। अत एवं तेषं काव्यमेव प्रीतिव्युत्पत्तिकृत अनपेक्षितनाट्यमपि।''[2]

अभिनय के सम्बन्ध में अभिनय गुप्त के विचार से अनुभाव, विभाव और संचारी भावों का सम्प्रप्राधाव्य केवल अभिनेय काव्यों द्वारा सम्भव होता है। वे कहते हैं कि ''नाटक के अभिनय के सम्बन्ध रंगमंच के वातावरण, पात्रों में वाचिक, आंगिक एवं आहार्य अभिनय एवं क्रियाव्यापार से अदृश्य सामाजिक भी सहृदय के सदृष अलौकिक रसास्वादन कर पाता है।

अभिनय के सम्बन्ध में डॉ. दशरथ ओझा जी ने लिखा है कि ''अभिनय के विविध साधनों में सम्पन्न, नृत्य, संगीत से संयुक्त नाटक आदि प्रबन्धकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी माने गये तो उसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? अभिनव गुप्त का तो मत है कि उत्तम नाटक रंगमंच की भी अपेक्षा नहीं रखता और सहृदय को अपने आन्तरिक गुणों के बल से स्वाध्याय के समय उसी प्रकार रसास्वादन करा सकता है। जिस प्रकार रंगमंच पर अभिनय के समय सामाजिकों को आह्लादित करने में समर्थ होता है।''[3]

हमारे भारत देश में नाटक की उत्पत्ति और उनके अभिनय आदि के सम्बन्ध में प्राचीन नाटक ग्रन्थों नाट्यशास्त्र सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। भरत मुनि के ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में स्वयं ब्रह्मा नाटक को परिभाषित करते हैं। वे नाटक को पंचमवेद (नाट्यभेद) कहकर उसे सम्पूर्ण संसार के भावों का अनुकरण मानते हैं। उसमें निष्कर्षतः कहा गया है कि ''जब लोगों की क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण होकर किया जाये तो वह नाटक कहलाता है।[4]

नाटक को परिभाषित करते हुए आचार्य भरत मुनि तथा अरस्तू दोनों के विचारों की समीक्षा कर डॉ. दशरथ ओझा ने लिखा है ''भरत मूनि और अरस्तू दोनों के विचारानुसार नाट्यकला का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत प्रतीत होता है। इसमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के कर्म को संश्रय मिलता है। यही ब्रह्मा ने स्पष्ट किया है और अरस्तू ने भी इसी पर बल दिया।''[5]

सर्वथा यह कहना गलत न होगा कि मानव समाज में नाट्यकला की उत्पत्ति उसी दिन हुई, जिस दिन किसी बालक ने खेल–खेल में अपने में किसी अन्य व्यक्ति की कल्पना की गई है। भारतीय और पश्चिमी विद्वान इस विषय पर वर्षों से गन्वेषणा करते चले आ रहे हैं, नाटक की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद जो कि संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है, में नृत्य कला के विकास के महत्व पर चर्चा की गई है। अभिनय कला के सम्बन्ध में डॉ. दासगुप्त का कथन है कि ''इसे स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि वैदिक मंत्रों में नाटकीय तत्व

विद्यमान हैं और तत्कालीन धार्मिक संगीत और नृत्य के साथ नाटक का सम्बन्ध अवश्य रहा है।''[6]

वैदिक काल में अभिनय

वैदिक काल में अभिनय के सम्बन्ध में विविध मत पाए जाते हैं– इससे सम्बन्धित विविध मतों का अध्ययन करने के पश्चात् डॉ. दासगुप्त ने लिखा है ''अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि वैदिक काल में नाटक के मौलिक तत्व विद्यमान थे, तथापि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उस काल में लोग नाटक के प्रारम्भिक रूप से अनभिज्ञ थे। न तो नाटक के पात्रों का वर्णन मिलता और न ही नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का कहीं उल्लेख है। सम्भव है कि नाटकीय धार्मिक उत्सवों से उस नाट्यकला का सम्बन्ध रहा हो, जो अभी गर्भस्थ–शिशु सदृश प्रकट नहीं हुई थी।''[7]

अभिनय के सम्बन्ध में कामसूत्र के रचनाकार वात्सायन ने कहा है ''पद्यस्थ मासस्य वा प्रख्यातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तिानां नित्यं समाजः।''[8] अतः यह कह सकते हैं। प्राचीन समय में अभिनय बड़ा ही लोकप्रिय है, उस समय साधारण लोग भी पारिवारिक उत्सवों के समय नाटकों का अभिनय किया करते थे। रंगभूमि और रंगमंच वस्तुतः एक बीज है जहाँ अभिनय होता था उसे रंगभूमि या केवल रंगमंच कहा जाता था। वहीं आज के सभी आधुनिक आलोचक और नाटककार अभिनेयता को नाटक का प्रमुख गुण मानते हैं जो हमारे प्राचीन भारतीय नाट्य विधान के समान है। वैसे हम अभिनेयता के पुनरूद्धार का श्रेय अवश्य ही अंग्रेजी नाटकों को है। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटकों की अभिनयप्रियता ने संस्कार–वश हिन्दी नाटकों को अभिनेय होने मे पूरी मदद की है। यही नहीं पाश्चात्य नाटकों में जो अश्लीलता अभिनय के माध्यम से व्यक्त होती है। उससे हमारा हिन्दी नाट्य जगत संस्कारवश बुरा समझता है और इसीलिए हमारे हिन्दी नाटकों में अश्लीलता का विरोध और बहिष्कार जागरूकतापूर्वक किया जाता रहा है।

प्रायः सभी विद्वानों ने माना है कि ''साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि प्रत्येक साहित्यकार अपने रचना कर्म के लिए सामग्री का चयन अपने परिवेश से ही करता है। उसका परिवेश ही उसे उचित भाव–भूत प्रदान विकसित होने के लिए एक वातावरण तैयार कर देता है। वह अपने बचपन में घटी घटनाओं से हमेशा प्रभावित रहता है। वह बचपन से ही जो कुछ अपनी जिन्दगी में जीता है उसी का चित्रण वह अपने साहित्य में करता जाता है। इसीलिए प्रत्येक युग के साहित्य पर उस युग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, इसीलिए उसे अपने युग का चितेरा कहा जाता है। साहित्यकार अपने साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक आदि के रूप में अपने युग का चित्रण अपनी रचनाओं में अवश्य करता है। इस बात का जीता जागता प्रमाण भीष्म जी का नाट्य साहित्य है।

सर्वप्रथम डॉ. नगेन्द्र जी के रंगमंच से जुड़े विचारों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है वे कहते हैं – ''समसामयिक रंगालोचन से पूर्व की नाट्य–समीक्षा या तो शास्त्रीय अध्ययनों की जड़ सैद्धान्तिकता में बंधकर चक्कर काटती रही या वह ''नाट्यशास्त्र और 'रूपक–रहस्य' की परम्परा रूढ़ लाठी से पीट–पीटकर ठेली जाती रही। व्यवहारिक रंग–दृष्टि और रंग–कर्म के अभाव में नाटक का रंगमंच से ठीकठीक तालमेल नहीं बैठ सका। नाट्यलोचन की यह परम्परा नाटक को अन्य विधाओं की फार्मूलाबद्ध आलोचना–पद्धति कथानक, चरित्र–चित्रण, संवाद, देशकाल, उद्देश्य, भाषा शैली में घेरकर समझाती रही। परिणामतः जीवन्त रंगमंच से न तो नाटक का पाला ही पड़ा और न ही नाटक 'प्रयोग–विज्ञान' की सार्थकता ही सिद्ध कर सका। नाटक को दृश्यत्व के उपेक्षित रहने का एक प्रधान कारण तो यही रहा कि हिन्दी के पास अपना कोई रंगमंच ही नहीं था। भारतेन्दु बाबू एक रंगमंच हिन्दी में विकसित करना चाहते थे किन्तु उनके असामयिक निधन से यह सम्भव न हो सका। स्वयं प्रसाद जी यह शिकायत करते रहे कि क्या करें हिन्दी के पास अपना रंगमंच नहीं है और जो है वह भी भ्रष्ट पारसी रंगमंच का रूप है, जिस पर श्रेष्ठ कलात्मक नाटकों को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। रंगमंच के अभाव में प्रसाद के नाटक उनके जीवन काल में उपेक्षित ही पड़े रहे और उनकी रंगमंचीय सीमाओं और सम्भावनाओं को उजागर नहीं किया जा सका। आज हिन्दी में रंगमंच के विकास के साथ यह सिद्ध हो गया कि प्रसाद के नाटक कल्पनाशील प्रतीकात्मक रंगमंच पर सफलता से प्रस्तुत किये जा सकते हैं और इन नाटकों की रंगमंचीय सम्भावनाएं असीम हैं।

.... किन्तु स्वाधीनता पाने के बाद देश में निर्माण की नयी आकांक्षाओं ने जन्म लिया और तभी से हिन्दी रंगमंच का सुनियोजित ढंग से विकास शुरू किया गया। व्यवसायिक और अव्यवसायिक रंगमंच उदित हुए और रंगकर्म की सृजनात्मकता को नया अर्थ मिला। छठे दशक के अन्त में संगीत नाटक अकादमी के अन्तर्गत 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा एण्ड एशियन' की स्थापना से रंगकर्मियों को नया क्षेत्र मिला। इब्राहिम इल्काजी के आने से हिन्दी रंगमंच को नया जीवन मिला और इन्हीं के प्रयासों से तकनीक का विकास और अच्छे नाटककारों का उदय, नये अभिनेताओं का रंगमंच की ओर आकृष्ट होना जैसे महत्वपूर्ण कार्य चल पड़े। इसी स्थिति के बीच से मोहन राकेश जैसे कुशल रंगकर्मी और नाटककार का उदय हुआ।[9]

वस्तुतः देखा जाये तो नाटक अभिनय और रंगमंच के द्वारा ही अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त करता है और नाटक शब्द की व्युत्पत्ति 'पाणिनी' ने 'नट' धातु से स्वीकार की है। वहीं 'बेबर' का मानना है कि 'नट' धातु 'नृत' (नाचना) धातु का ही विकृत रूप है, परन्तु ऋग्वेद में नृत और नट् दोनों धातुओं का प्रयोग किया मिलता है। अतः 'नट' को 'नृत' का विकृत रूप नहीं माना जा सकता। वस्तुतः नृत्य भावाश्रित होता है और नाट्य रसाश्रित। नृत्य सिर्फ नाटक का अंग होता है सम्पूर्ण नाटक नहीं। इससे ज्ञात होता है कि नाटक बिना रंगमंच के, बिना अभिनय के अपना स्वरूप खो देता है।

संस्कृत में कहा भी गया है–''काव्येषु नाटकं रम्यं'' यह सूक्ति नाटक की महत्ता को प्रतिपादित करती है। नाटक निश्चय ही अन्य सभी विधाओं से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक, मनोरंजक एवं आनन्ददायक होता है। नाटक में दृश्य नियोजन के माध्यम से घटना का चाक्षुष प्रत्यक्ष करवाकर दर्शकों को रसानुभूति कराई जाती है। मूर्त और प्रत्यक्ष होने के कारण वह अन्य अमूर्त काव्यों की तुलना में अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है।

चूँकि नाटक दृश्य काव्य है, अतः उसकी रचना अभिनय के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए की जाती है। नाटक ऐसे होने चाहिए कि उन्हें रंगमंच पर अभिनीत करने में कोई कठिनाई न हो। अभिनेता मूल पात्र का रूप–विन्यास धारण कर जो चेष्टाएं, वार्तालाप एवं हावभाव प्रदर्शित करते हैं, उसे अभिनय कहा जाता है। अभिनय की कुशलता पर नाटक की सफलता निर्भर करती है।

वस्तुतः नाटक की रचना रंगमंच के लिए की जाती है। अतः अभिनेयता एवं रंगमंचीयता नाटक का प्रमुख तत्व है। नाटक ऐसे हों कि उन्हें सरलता से रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके। उनमें पात्रों की संख्या कम हो, दृश्य भी सीमित हो और ऐसे दृश्य भी न हो कि उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कठिनाई हो। संवाद छोटे–छोटे हों, भाषा सरल हो तथा रोचकता का समावेश हो। नृत्य एवं गीत हों, किन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में नाटक का प्राचीन स्वरूप तो बहुत लुप्त होता जा रहा है क्योंकि अब बहुत से लोग नाटक को रंगमंच के लिए न लिखकर पढ़ने के लिए लिखने लगे हैं। वहीं आज के सिनेमा ने भी नाटकों को बहुत कुछ प्रभावित एवं परिवर्तित सम्वर्द्धित किया है, किन्तु फिर भी नाटक और सिनेमा में मूल रूप से अन्तर है इसीलिए वे एक–दूसरे के विकल्प कदापि नहीं बन सकते।

वैसे देखा जाए तो मानव जीवन स्वयं एक नाटक है, और यह संसार एक नाटक स्थली है जिसमें पात्र मिलते–बिछुड़ते रहते हैं और कभी लगता है कि पटापेक्ष होने ही वाला है, परन्तु नहीं, कोई दुर्दान्त इच्छा अदृश्य की ओर सतत् धकेलती रहती है ''और आगे क्या है'', उसे देखने की इच्छा सतत् बनी रहती है।

सन्दर्भ सूची

1. ओझा, दशरथ. *''हिन्दी नाटक उद्भव विकास,''* पृ0–30।
2. *अभिनव भारतीय,* अध्याय–6 पृ0–288
3. ओझा, दशरथ. *''हिन्दी नाटक उद्भव विकास,''* पृ0–34।

4. वहीं पृ0–35।
5. ओझा, दशरथ. ''हिन्दी नाटक उदभव विकास,'' पृ0–36।
6. Das Gupta, S.N., De, S.K.. *"History of Sanskrit Literetre."* Volum I. 1947, p.44.
7. Das Gupta, S.N., De, S.K.. *"History of Sanskrit Literature."* University of Calcutta, 1947, page 46.47.
8. *कामसूत्र,* नागरवृत्त प्रकरण. 15।
9. नगेन्द्र, *''हिन्दी साहित्य का इतिहास,''* पृ0 785–86।

****